चौथी गाथा चलती है। देखो! इस चौथी गाथा में मुख्य वस्तु है, देखो! ऐसा कहा न? **'मुख्योपचार विवरण निरस्तदुस्तरविनेय दुर्बोधाः व्यवहार निश्चयज्ञाः प्रवर्तयन्ते जगति तीर्थम्'**

**भावार्थ : उपदेशदाता...** उपदेश के देनेवाले, **आचार्य में अनेक गुण चाहिए...**

www.vitragvani.com



उपदेश के करनेवाले वक्ता में अनेक गुण चाहिए। **परन्तु व्यवहार और निश्चय का ज्ञान मुख्यरूप से चाहिए।** देखो! सबमें यह मुख्य कहा है। पूरा इस पर जैनदर्शन का अथवा वस्तुतत्त्व का आधार है। **व्यवहार और निश्चय का ज्ञान मुख्यरूप से चाहिए।** किसे व्यवहार कहते हैं, किसे निश्चय कहते हैं? - इसका यदि ज्ञान न हो तो यथार्थ उपदेश नहीं कर सकता और यथार्थ उपदेश के बिना शिष्य के अज्ञान को मिटा नहीं सकता।

**किसलिए? जीवों को अनादि से अज्ञानभाव है, वह मुख्य...** अज्ञानी को अज्ञानभाव है, वह इतना। जीवों को अनादि का अज्ञानभाव है। यह बात। **(निश्चय) कथन और उपचार (व्यवहार) कथन के जानने से दूर होता है।** समझ में आया? अनादि का मिथ्याभ्रम और अज्ञान जो है, वह मुख्य ज्ञान - मुख्य कथन और उपचार/व्यवहार कथन द्वारा उसका अज्ञान नाश होता है। **वहाँ मुख्य कथन तो निश्चयनय के आधीन है,...** मुख्य का कहना, वह तो निश्चयनय के आधीन है। **वही बताते हैं।** लो!

**'स्वाश्रितो निश्चय:'** स्व-आश्रय, वह निश्चय; **जो अपने ही आश्रय से हो उसको निश्चय कहते हैं।** स्व-आश्रय, वह निश्चय — ऐसा इसे ज्ञान हो। स्व-आश्रय में अपने द्रव्य में जो भाव हो, उसे निश्चय कहते हैं। इसके भी दो अर्थ हैं — स्व-आश्रय में अपने द्रव्य में हो और अपने अभेदभाव में हो, उसे भी स्व-आश्रय कहा जाता है। समझ में आया? निश्चय का विषय अभेद विषय है; इसलिए स्व-आश्रय में पर-आश्रय नहीं होता और उसमें वास्तव में तो गुण-गुणी के भेद का भी पर-आश्रय, स्व-आश्रय में नहीं होता। समझ में आया? स्व / अपना स्वरूप जो अभेद है, उसके आश्रय से निश्चय प्रवर्तता है। कहो, वजुभाई! अपने ही आश्रय से जो हो, उसे निश्चय कहते हैं। एक बात तो, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय अपने आश्रय से है, उसे निश्चय कहते हैं और दूसरी बात, कि अभेद में भेद नहीं; उस अभेद को भी निश्चय कहते हैं। समझ में आया?

स्व चैतन्यस्वरूप अभेद स्व-आश्रय में... (समयसार की) ११ वीं गाथा लो तो भूतार्थ अकेला अभेद, वह स्व है और उसकी पर्यायभेद और गुणभेद, सब स्व-आश्रय में नहीं आता। नहीं आता इतना तो थोड़ा मेल नहीं करता? नहीं तो अन्दर जरा भूला हो जाए। समझ में आया? एकरूप चैतन्य, पर से भिन्न, परन्तु पर से भिन्न होने पर दृष्टि स्व के ऊपर

www.vitragvani.com



जाए तो वह भेद से भी भिन्न हो गया है। समझ में आया? आत्मा, वह परद्रव्य से भिन्न; शरीर-कर्म आदि से भिन्न — ऐसा कहते ही उसका स्व-आश्रय अभेद रह गया।

**मुमुक्षु :** .....

**उत्तर :** यह तो यह का यह आया। परद्रव्य से भिन्न — ऐसा स्वद्रव्य बतावे, तब परद्रव्य से भिन्न स्व-आश्रय बतावे। पर से भिन्न होने पर, स्व-आश्रय अभेद अकेला रहा। उसमें राग और भेद भी स्व-आश्रय में नहीं आया। समझ में आया? देखो! यह **'मुख्योपचार विवरण निरस्तदुस्तरविनेय दुर्बोधाः'** इसका **'प्रवर्तयन्ते जगति'** मुख्य चाहिए। इसका ही अभी मूल विवाद है। निश्चय और व्यवहार वास्तविक किसे कहना — इसके स्वरूप के अज्ञान के कारण सब गड़बड़ उठी है। समझ में आया?

स्व-आश्रित निश्चय। एक तो स्व /अपना द्रव्य-गुण और पर्याय, यह अपने में रहे हुए भाव; पर के भाव इसमें नहीं। इसलिए एक तो आगमदृष्टि से सामान्य स्व से लें तो पर से भिन्न स्वद्रव्य, इसका आश्रय हुआ; परन्तु अन्तर निश्चयदृष्टि-अध्यात्मदृष्टि से लें तो स्व-आश्रय अर्थात् अभेद, वह स्व रहा। उसके गुण-पर्याय; परद्रव्य तो भिन्न रह गया, परन्तु इसके गुणभेद और पर्यायभेद भी पर में और व्यवहार में और पर में गये। समझ में आया?

स्व-आश्रय, वह निश्चय। भगवान आत्मा अभेद अनुपचार पदार्थ, वह स्व। उसके आश्रय से निश्चय का कथन चलता है। इस प्रकार निश्चय की वास्तविकता न जाने तो उसका उपदेश यथार्थ नहीं हो तो दूसरे का अज्ञान मिटाने को निमित्त भी नहीं हो। समझ में आया?

**जो अपने ही आश्रय से हो, उसको निश्चय कहते हैं। जिस द्रव्य के अस्तित्व में जो भाव पाये जावें, उस द्रव्य में उनका ही स्थापन करना,** जो द्रव्य के होने में, पदार्थ के होने में, जो भाव हो उस द्रव्य में उसकी ही स्थापना करना, इसका नाम निश्चय। आहाहा! द्रव्य के-पदार्थ के होनेपने में जो भाव... यहाँ ज्ञायकभाव लेना है न? द्रव्य का त्रिकाली भाव लेना है, पहला साधारण भाव और फिर त्रिकाली। कारण कि साधारणभाव इसका स्वयं में है और पर नहीं, परन्तु पर से भिन्न पड़ने पर उसे साधारण अकेला ज्ञायकभाव ही स्वयं में है — ऐसी दृष्टि जाती है। समझ में आया?

www.vitragvani.com



द्रव्य के होने में जो भाव प्राप्त हो, उस द्रव्य में उसका स्थापन करना। परद्रव्य के गुण-पर्याय और द्रव्य, आत्मा में नहीं। ऐसे जब पर, आत्मा में नहीं और अपना भाव अपने में है, अपना भाव अपने में है; पर के द्रव्य-गुण भाव, आत्मा में नहीं; अपना भाव अपने में है — ऐसा करने पर, परद्रव्य के गुण-पर्याय मुझमें नहीं, उसका लक्ष्य छोड़ने पर, मेरा भाव मुझमें हैं — ऐसी दृष्टि जाने पर, निश्चय में तो गुणभेद और पर्यायभेद भी स्व-आश्रय में नहीं रहते। समझ में आया? कहो, समझ में आता है या नहीं?

स्व-आश्रय, वह निश्चय। अर्थात् स्व-शब्द में दो प्रकार — एक, स्व अर्थात् पर से भिन्न और एक स्व अर्थात् अकेला अभेदभाव, वह स्व। समझ में आया? ऐसा जो कथन चले अथवा ऐसा जो भाव अन्दर भासित हो, स्वद्रव्य आश्रय, उसे निश्चय कहने में आता है। यह गाथा ही पूरी सिद्धान्त में, निश्चय और व्यवहार के मुख्य गुण को अथवा उपचार को जानकर, वास्तविक जानना और कहना, वह सम्पूर्ण जैनशासन का तीर्थ प्रवर्तने में मुख्य हेतु है। समझ में आया?

**परमाणुमात्र भी अन्य कल्पना न करना...** देखो! कल्पना तो आयी यहाँ। देखो! पहले में—व्यवहार में कल्पना करनी—ऐसी बात (आयेगी)। **उसे स्वाश्रित कहते है।** एक अंश भी पर का अपने में कल्पित न करना, अन्य कल्पना (न करनी), उसे स्व-आश्रित कहते हैं। एक तो परद्रव्य और परद्रव्य के गुण-पर्याय को अंशमात्र अपने में कल्पित न करना। समझ में आया? और अभेद में भेद जो पर है, उसे भी अभेद में कल्पित न करना। समझ में आया? कठिन पड़ता है? **परमाणुमात्र भी अन्य कल्पना न करना...** एक अंश भी परद्रव्य का इसमें है — ऐसा न कहना। इसका अर्थ हो गया कि परद्रव्य से भिन्न पड़ने पर, उसे अन्तरदृष्टि में अभेद-आश्रय हुआ; उसमें भेद का भी वास्तव में आश्रय नहीं रहा; इसलिए भेद भी इस दृष्टि से व्यवहार हो गया; स्व-आश्रय में रहा नहीं। समझ में आया? क्या कठिन पड़ता है इसमें?

वस्तु है; एक समय में अनन्त स्वभाव गुण सम्पन्न पदार्थ है। अब स्व-आश्रय निश्चय की व्याख्या चलती है। स्व-आश्रय, स्व-अवलम्बन; स्व-अवलम्बन के आश्रय निश्चय है। आश्रय कहो या अवलम्बन कहो। स्व-अवलम्बन के आश्रय निश्चय है,

www.vitragvani.com



इसका अर्थ हुआ कि परपदार्थ का अवलम्बन का एक अंश भी इसमें नहीं आता। अब, जब परपदार्थ का एक भी अंश अवलम्बन के लिये अथवा इसमें नहीं आता, तब स्व-आश्रय, वह स्व-अवलम्बन का आश्रय करना, यह निश्चय। इसका अर्थ हुआ कि इसमें गुण और पर्याय के भेद का भी अवलम्बन नहीं रहता। गुण और पर्याय का अवलम्बन अर्थात् आश्रय नहीं रहता, अवलम्बन नहीं रहता, आधार नहीं रहता, लक्ष्य नहीं रहता; इससे स्व-आश्रय में अकेला अभेद अनुपचार पदार्थ, जिसे निश्चय में आता है, उसे यहाँ निश्चय कहने में आता है। कहो, समझ में आया इसमें? इतना सब किस प्रकार याद रहे? धर्मचन्दजी! रात्रि को यह सब पूछें तो याद रहे? इसमें इतना सब कहाँ था? इसमें तो थोड़ा, बहुत संक्षिप्त है।

भगवान आत्मा स्व-अवलम्बी निश्चय; पर-अवलम्बी व्यवहार। स्व-अवलम्बी निश्चय, अर्थात् भगवान आत्मा में परद्रव्य का एक अंश किंचित् भी नहीं। (पर के अंश की) ऐसी कल्पना करना छोड़ देना। पर का अंश मुझमें नहीं और जब पर का अंश मुझमें नहीं अर्थात् स्वद्रव्य, वह मैं हूँ — ऐसी दृष्टि जाने पर स्व का अवलम्बन अकेला अभेद रह गया। अभेद अवलम्बन में उसके गुणभेद का भी अवलम्बन, लक्ष्य, आश्रय रहा नहीं; इस कारण स्व-आश्रय में अकेला अभेद ही अवलम्बन रह जाता है; उसे यहाँ वास्तव में निश्चय कहा जाता है, क्योंकि पाँचवीं गाथा में यही कहेंगे। **'निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्'** है न ११ वीं गाथा? वही यहाँ अब कहेंगे। समझ में आया?

आचार्य यहाँ (कहते हैं कि) **'मुख्योपचार विवरण'** वह यदि मुख्य-उपचार का ज्ञान जानता होवे तो वह यथार्थरूप से प्ररूपण। कथन करे अथवा जाने तो उसे अज्ञानपना जो है, मुख्यपना किये बिना और गौण-भेद को और पर को गौण किये बिना, उपचार के व्यवहार के भेदों को छोड़े बिना, अभेद के आश्रय बिना शिष्य का अज्ञान मिटता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? वजुभाई! अज्ञान का मिटना अर्थात् मिथ्यात्व का टलना, यह मुख्य-उपचार के ज्ञान द्वारा होता है। इसका अर्थ यह कि जो इसे मिथ्यात्व है, इसे परद्रव्य से भिन्न बताने से स्वद्रव्य में आश्रय कराने से, इसके गुण-पर्याय के भेद का अवलम्बन और आश्रय छुड़ाने से... क्योंकि वह उपचार और व्यवहार में जाता है; अकेला अभेद

www.vitragvani.com



चैतन्यमूर्ति भूतार्थ रहता है। उसके आश्रय से निश्चयनय प्रवर्तता है — ऐसा यदि इसे कहे, ऐसा यदि यह जाने, ऐसा यदि यह प्रवर्ते तो इसका अज्ञान दूर हो। कहो, समझ में आया इसमें?

यह गाथा तो मुख्य में ली। तीर्थ प्रवर्ताने में यह मुख्य वस्तु ली। इसे निश्चय और व्यवहार अथवा यथार्थ और उपचार... समझ में आया? **मुख्य और उपचार** – मुख्य अर्थात् यथार्थ, निश्चय यथार्थ और उपचार आरोपित कथन, भेद का कथन, पर का कथन सब। समझ में आया? वह सब उपचार का कथन, व्यवहार का कथन है। ऐसे निश्चय और व्यवहार के वास्तविक तत्त्व को जानता नहीं, उसका ज्ञान, जगत को वास्तविक कह नहीं सकता। वास्तविक नहीं कहे तो शिष्य को अज्ञान मिटाना है तो अज्ञान मिटाने का उपाय कि जो परद्रव्य से भिन्न और गुणभेद से भी भिन्न—ऐसा उसे कहे बिना, उसका अज्ञान, स्व का आश्रय लिये बिना मिटे नहीं। समझ में आया? लोगों को यह बहुत सूक्ष्म (पड़ता है)। इसलिए ऐसा कहते हैं — यह यात्रा कर लें, यह कर लें, अमुक कर लें, देखो न! कितना उत्साह था। बाहुबलीजी को चौदह वर्ष होते हैं, चलो... चलो। यह बाहुबल अनन्त काल में नहीं चढ़ा अन्दर में यह तो देख! इसने कभी इसकी यात्रा ही नहीं की। आहाहा..!

भगवान आत्मा स्व परिपूर्ण द्रव्यस्वभाव-एकरूप भाव, उसके आश्रय से प्रवर्तता निश्चय, ऐसा जो वह ज्ञान जानता हो, उस प्रकार जगत को कहता हो, उस प्रकार अपने लक्ष्य में आता हो तो उस प्रकार पकड़कर उसके अज्ञान का नाश हो। कहो, समझ में आया?

**परमाणुमात्र भी अन्य कल्पना न करने का नाम स्वाश्रित है। उसका जो कथन है, उसी को मुख्य कथन कहते हैं।** देखो! इसे ही मुख्य कथन कहते हैं, मुख्य ही यह है। **इसको जानने से...** इसे जानने से। देखो! अब। किसे? निश्चय को, मुख्य को जानने से। **अनादि शरीरादि परद्रव्य में एकत्व श्रद्धानरूप अज्ञानभाव का अभाव होता है,...** देखो! **इसको जानने से अनादि शरीरादि परद्रव्य में एकत्व श्रद्धानरूप...** यह सब मैं हूँ — ऐसी जो दृष्टि पर में थी। शरीरादि... समझ में आया? कर्म आदि परद्रव्यों

www.vitragvani.com



में एकत्वबुद्धि–परद्रव्यों में एकपने की बुद्धि थी, उस **एकत्व श्रद्धानरूप अज्ञानभाव का अभाव होता है,...** शरीरादि परद्रव्यों में एकत्वबुद्धि थी, वहाँ से टलकर स्वद्रव्य में एकत्वबुद्धि हुई। इसका अर्थ ही यह हुआ। समझ में आया?

उपासना का कहा न? मूल तो यही बात लेते हैं। परद्रव्य से भिन्न उपासित होता हुआ वह शुद्ध कहलाता है। परद्रव्यों से भिन्न, भिन्न, परन्तु परद्रव्यों से भिन्न करते अभेद में दृष्टि गयी, तब उसके राग का भी सेवन नहीं रहा। जब अभेद का सेवन हुआ, तब ही उसे निश्चय कहा जाता है। समझ में आया?

**इसको जानने से...** इसे अर्थात्? मुख्य को, इसे अर्थात् निश्चय को, इसे अर्थात् स्व–आश्रित निश्चय को, स्व आश्रय को, इसे अर्थात् स्व–अवलम्बन को। समझ में आया? **इसको जानने से...** स्व–अवलम्बन को जानने से, स्व–आश्रय निश्चय को जानने से। स्व–आश्रय, वही मुख्य है उसे, यथार्थ है उसे जानने से अनादि शरीरादि परद्रव्यों में जो परलक्ष्यी बुद्धि थी, एकत्व श्रद्धानरूप अज्ञानभाव का अभाव होता है। इसका अर्थ ही हुआ कि पर–आश्रय छुड़ाकर, स्व–आश्रय कराते हैं। स्व–आश्रय करने से इसकी पर्याय पर भी लक्ष्य नहीं रहता। पर का लक्ष्य छोड़ने पर इसका पर्याय पर भी लक्ष्य नहीं रहता, इसके राग पर और पर्याय पर लक्ष्य नहीं रहता हो, उसे पर का आश्रय छोड़ने पर स्व का आश्रय होता है और स्व का आश्रय आने पर उसके गुण–पर्यायभेद भी दृष्टि में नहीं रहते, तब इसका अज्ञान नाश होता है। कहो, वजुभाई! इसमें है या नहीं यह? बड़ा विवाद! फिर यह कहेंगे, अभेद... अभेद... अभेद।

गुण–गुणी भेद भी व्यवहार है; यह व्यवहार है, वह अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, अर्थात् पर है, अर्थात् झूठा है, इसमें नहीं – ऐसा। समझ में आया? क्या कहा? आत्मा में पर तो नहीं, परन्तु आत्मा एकरूप दृष्टि के स्व–आश्रय के अवलम्बन में इसके गुणभेद और पर्यायभेद भी अवस्तु हो गयी, अवस्तु हुई। अवस्तु अर्थात् स्व–आश्रय में रही नहीं, अभेद में रही नहीं, स्व–अवलम्बन में रही नहीं; इसलिए वह अवस्तु हो गयी। इसलिए इस दृष्टि से गुण–गुणीभेद और पर्यायभेद भी व्यवहार में जाता है। समझ में आया इसमें?

**भेदविज्ञान की प्राप्ति होती है,...** देखो! अज्ञानभाव का अभाव होता है, इसलिए

www.vitragvani.com



भेदविज्ञान की प्राप्ति होती है, अर्थात् कि पर से भिन्न का भान होता है। जब पर से भिन्न स्व-आश्रय अभेद का आश्रय ले, तब पर से भिन्न होता है। पर से भिन्न होने पर उसे राग से भी भिन्न की सेवा हो गयी। समझ में आया? पर-आश्रय में लक्ष्य था, वहाँ राग था और पर-आश्रय का लक्ष्य जहाँ छूटा और स्व-आश्रय आया, तब उसे परद्रव्य तो रहा नहीं, परन्तु परद्रव्य के लक्ष्य से (होता हुआ) राग भी नहीं रहा। उसका लक्ष्य राग पर नहीं रहा, परन्तु वर्तमान पर्याय पर (भी) नहीं रहा - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तब उसने निश्चय को जाना कहलाता है। तब अज्ञान टले और भेदविज्ञान हो न! वरना किस प्रकार हो?

भेदविज्ञान किस प्रकार हुआ? पर से भिन्न और अभेद में एकाकार हुआ, उसे निश्चय कहा; तो पर से भिन्न पड़ने पर, गुण-गुणी भेद और पर्याय का लक्ष्य रहा नहीं, तब पर से भिन्न पड़ा, तब भेदविज्ञान हुआ। समझ में आया? भेदविज्ञान अर्थात् पर से भिन्न, सव से अभिन्न - ऐसे भेदविज्ञान है। पर से भिन्न — ऐसे भेदविज्ञान कहा। समझ में आया? यहाँ पर से भिन्न विकल्प... ऐसा नहीं। पर से भिन्न और अपने से अभेद — ऐसा होने पर स्वयं ज्ञायकभाव चैतन्यस्वरूप अभेद में एकरूप का अवलम्बन और आश्रय हुआ, भेदविज्ञान हुआ तब। तब तो पर से भिन्न पड़ा; (वरना) किस प्रकार भिन्न पड़े? समझ में आया? आहाहा..!

**अज्ञानभाव का अभाव होता है,....** ऐसे दो बोल लिये हैं। और भेदज्ञान (प्राप्त होता है)। नास्ति ली और पहले अस्ति ली - इतनी बात है। बात तो वह की वह है। पर का आश्रय टलने पर, स्व का आश्रय होने पर, पर के आश्रय की एकत्वबुद्धि का नाश (हुआ), तब हुआ क्या? भेदज्ञान की प्राप्ति। समझ में आया? **भेदविज्ञान की प्राप्ति होती है,...** भगवान आत्मा! ऐसा निश्चय का स्व-आश्रित भाव और उपचरित व्यवहार का भाव, यह क्या है — इसका जिसे ज्ञान नहीं, उसके कथन में विपरीतता आये बिना रहती नहीं और अन्य का (श्रोता का) अज्ञान टलता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

अस्ति-नास्ति से बात की है — अज्ञानभाव का अभाव, भेदज्ञान की प्राप्ति। स्व-आश्रय — स्व आलम्बी, स्व-अवलम्बन की अपेक्षा से परवस्तु तो भिन्न रह गयी, परन्तु स्व के अवलम्बन में उसके गुण-पर्याय के भेद भी स्व-अवलम्बन में रहे नहीं। समझ

www.vitragvani.com



में आया? इसे यह रीति ही कभी ख्याल में नहीं आयी। ये जो हो किया करे — यह करो, यह करो, यह भक्ति करो, व्रत पालो, दया पालो, भगवान का स्मरण करो, सामायिक करो! परन्तु सामायिक किसकी? शोभालालभाई! मिथ्यात्व सेवे तब सन्तोष हो, अज्ञान का सेवन करे, तब इसे सन्तोष हो... स्व का आश्रय अभेद क्या है — इसकी दृष्टि का पता नहीं पड़ता, इसलिए इसमें (क्रियाओं में) रुके, तब इसे ऐसा लगता है कि कुछ करता हूँ। करता क्या है? जो करता है, वह करता है, अनादि का एकत्वबुद्धि का मिथ्यात्व। समझ में आया?

यह तो पुरुषार्थसिद्धि-उपाय है। पुरुषार्थ — पुरुष चैतन्य के प्रयोजन की सिद्धि स्व-आश्रय से होती है और उपचार कथन जो जाननेयोग्य है — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आचार्य भी भिन्न-भिन्न शास्त्र रचते, भिन्न-भिन्न प्रकार से वस्तु की विशेषता बताते हैं, स्पष्टीकरण-स्पष्ट करते हैं। समयसार और इसमें परस्पर कहीं विरोध नहीं है, हों! लालभाई नहीं? गये। इसमें समयसार का ही आता है। मैंने कहा, समयसार का ही आता है परन्तु दूसरे ढंग से आता है। रीति तो वही आती है न! दूसरी रीति आवे किसकी? समझ में आया? यह तो स्वयं खास ग्रन्थ रचा है, वह (समयसार की) तो टीका थी (और यह तो) अमृतचन्द्राचार्य का स्वयं का ग्रन्थ है।

**सर्व परद्रव्य से भिन्न...** देखो! स्व-आश्रय निश्चय में उसे मुख्य करके जानने में आवे, तब अनादि अज्ञान का नाश होकर भेदविज्ञान की प्राप्ति होती है। देखो न! टोडरमल का कथन बहुत! **सर्व परद्रव्य से भिन्न...** अब, देखो! सर्व परद्रव्य — कर्म, शरीर, वाणी, मन, देव-गुरु-शास्त्र सब; कर्म और नोकर्म। **परद्रव्य से भिन्न अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव होता है।** भाषा देखो! वापस ऐसा नहीं कि परद्रव्य से भिन्न स्वयं की पर्याय, राग आदि का अनुभव होता है।

**मुमुक्षु :** शुद्धस्वरूप का....

**उत्तर :** शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव होता है, क्योंकि ऐसे पर से भिन्न स्व-आश्रय हुआ, वहाँ स्व-आश्रय में शुद्ध चैतन्य ही दृष्टि में रह गया। समझ में आया? स्व-आश्रय, वह निश्चय और स्व-आलम्बी, वह निश्चय — ऐसा कहते ही पर-आश्रय और

www.vitragvani.com



पर-आलम्बन छूटने पर... कहा न? **सर्व परद्रव्य से भिन्न...** अर्थात् पर-आश्रय — पर-आलम्बन छूटने पर, ऐसा। परद्रव्य से भिन्न अर्थात् पर-आश्रय और पर-अवलम्बन छूटने पर, **अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव होता है।** इसका अर्थ कि पर-आश्रय में परद्रव्य आदि तो आये, परन्तु गुणभेद भी पर में आया। उससे भी छूटकर यहाँ शुद्धस्वरूप का अनुभव होता है। समझ में आया? है न पुस्तक सामने? यहाँ तो पुस्तकें अब तो तैयार हुई हैं, फिर तो यह शुरु किया है। समझ में आया?

इसे 'जिनप्रवचन रहस्य कोष' भी एक नाम दिया है। चाहे जिसने दिया हो। समझ में आया? 'जिनप्रवचन रहस्य' — उसका रहस्य है, उसका यह कोष है। तुम्हारे दवा का कोष होता है न एक? ...वैसे यह सम्पूर्ण जैन सिद्धान्त का रहस्य कोष है, रहस्य कोष है, मर्म का कोष है यह। समझ में आया?

सर्व परद्रव्य से (भिन्न) स्व-आश्रय निश्चय में, स्व-आश्रय-अवलम्बन में, निश्चय की मुख्यपने की दृष्टि में, निश्चय के अन्तर अभेद के मुख्यपने में आने पर **परद्रव्य से भिन्न अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप...** देखो! अपना यह। अपना वह राग और पर्याय अंश ऐसा नहीं। अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप जो त्रिकाल, उसका अनुभव होता है। अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप, वह द्रव्य हो गया, वस्तु हुई। समझ में आया? **परद्रव्य से भिन्न अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप का...** अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप, वह स्व-आश्रय में रह गया। समझ में आया? पुस्तक दी है न? तुम्हें दी है न? पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, लड़के ने दिया है। बहुत सूक्ष्म बात है यह। आहाहा...!

भगवान आत्मा...! यहाँ तो अपने स्व-आश्रय का वजन देकर सब अर्थ होता है। स्व-आश्रय निश्चय। स्व-आश्रय निश्चय कब हुआ कहलाये? कि जब इसे शुद्ध चैतन्यस्वरूप जो है, उसका आश्रय हुआ, उसका अवलम्बन हुआ, (तब) अनुभव होता है, तब उसका अनुभव होता है। आहाहा...! समझ में आया?

'स्व-आश्रयो निश्चय', 'स्व-आश्रयो मुख्य।' स्व-आलम्बी निश्चय, स्व-आलम्बी सत्य। लो! और दूसरा शब्द आया। स्व-आश्रयो निश्चय, स्व-आश्रय-स्वालम्बी निश्चय, स्वालम्बी सत्य, परालम्बी असत्य, ऐई..! समझ में आया? स्वालम्बी सत्य, स्वालम्बी

www.vitragvani.com



मुख्य, स्वालम्बी एक चैतन्य, शुद्ध चैतन्यस्वरूप, लो! ऐसे आश्रय होने पर शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव होता है, देखो! कितनी बात लिखी है...! टोडरमलजी भी....

एक व्यक्ति कहे – पुरुषार्थसिद्धि-उपाय लो। और एक व्यक्ति कहता था – समयसार तीन दिन में पढ़ लिया। तीन दिन में समयसार! परन्तु तुम्हारे महाराज क्या इतने वर्ष से पढ़ा ही करते हैं, अभी... ऐई! जीतू गया या नहीं? जीतू है या नहीं? वह जीतू कहता था कि मेरी माँ को किसी ने कहा यहाँ... तुम्हारे महाराज, इतने-इतने वर्ष हुए परन्तु यहाँ तो तीन दिन में समयसार पूरा पढ़ लिया, लो! उसमें क्या नया? पोषाये ऐसी बात करे। आहाहा..! भाई! स्व-आश्रय समयसार पढ़ना चाहिए, वह पढ़ा कहलाता है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अभेद चैतन्यज्योति का आश्रय लेकर, उसका अनुभव करने पर शुद्ध चैतन्यस्वरूप का ही आश्रय रह गया – ऐसा कहते हैं और इससे उसका अनुभव होता है, उसका अनुभव होता है। जिसका आश्रय रहा, उसका अनुभव हुआ। इसका आश्रय रहा नहीं – पर का आश्रय रहा नहीं, पर का अवलम्बन रहा नहीं, पर का पक्ष रहा नहीं, पर का लक्ष्य रहा नहीं। इसी प्रकार गुणभेद का आश्रय रहा नहीं, गुणभेद का पक्ष रहा नहीं, गुणभेद का लक्ष्य रहा नहीं। समझ में आया?

कहते हैं — तीन बातें की हैं। क्या तीन? कि स्व-आश्रय निश्चय को दृष्टि में लेने से, आश्रय करने से, अवलम्बन करने से अज्ञान का अभाव होता है, भेदविज्ञान की प्राप्ति होती है और शुद्ध चैतन्यस्वरूप, अपने शुद्ध चैतन्य का अनुभव होता है। लो! तीन बोल लिये। कहो, समझ में आया? इस प्रकार भेदज्ञान तो ऐसे कहा। अज्ञान का अभाव, भेदज्ञान की प्राप्ति, इसका (चैतन्यस्वरूप का) अनुभव, ऐसा। समझ में आया? इसमें ऐसा है या नहीं? है? टोडरमलजी ने लेखन तो गजब किया है, हों! ऐसे लेखन करनेवाले को और फिर हम जाननेवाला टोडरमल प्रमाण... उनकी अपेक्षा हमने बहुत शास्त्र जाने हैं (– ऐसा कहते हैं।) अरे भाई! देखो न! कितना तोल-तोलकर रखा (लिखा) है। समझ में आया? समयसार में पण्डित जयचन्द (जी) का है, यह टोडरमल (जी) का है।

भाई! स्व-आश्रय निश्चय का ज्ञान, आचार्य को अथवा वक्ता को, जैसा है, वैसा

www.vitragvani.com



न होवे तो शिष्यों का अज्ञान दूर नहीं होगा; अज्ञान दूर नहीं होने पर भेदज्ञान नहीं होगा, भेदज्ञान नहीं होने पर शुद्ध चैतन्य का अनुभव नहीं होगा। स्व-आश्रय अभेद का ज्ञान हो तो उसके कथन में वह मुख्यरूप से आने पर, शिष्य भी उस मुख्यपने के स्व-आश्रय को लक्ष्य में, दृष्टि में लेकर तथा अनादि पर की एकबुद्धि का अज्ञान नाश होकर, पर से भिन्न पड़ने पर शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव होता है। कहो, समझ में आया या नहीं? धीरे-धीरे नरम पड़ा या नहीं? अब कितना-सा रहा? यह तो घूँटता है, धीरे-धीरे तो घूँटता है। यह कोई प्रोफेसर की तरह एकदम नहीं चलता है। आहा...! अरे...!

मुख्य कहकर, निश्चय कहकर, स्व-आश्रय कहकर, यही तू पूरा एक ही है — ऐसा कहते हैं, लो! समझ में आया? यही अखण्डानन्द प्रभु अभेद, जिसे यहाँ अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप — ऐसा शब्द प्रयोग किया है। अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप, वही सत्य, वही मुख्य, वही स्व-आश्रय, वही आश्रय करनेयोग्य, वही अवलम्बन करनेयोग्य - ऐसा निश्चय से ऐसा जिसे स्व-आश्रय निश्चय का ज्ञान है, वह यथार्थ उपदेश कर सकता है। फिर दूसरे शास्त्र भले अनेक हो — धवल, जयधवल और महाधवल - उनमें कोई दूसरा नहीं होता; उनमें भी यह की यही बात सिद्ध करने की व्यवहार की दूसरी बात होती है। समझ में आया? यह जिसके लक्ष्य में-दृष्टि में नहीं, उसे सच्चा ज्ञान नहीं और वह सच्चा ज्ञान दूसरे को कह सकता नहीं। उपचार के कथनों को सच्चा ठहराकर पर का आश्रय छुड़ाता नहीं, उसे अज्ञान मिटता नहीं, भेदविज्ञान होता नहीं और शुद्धस्वरूप का अनुभव होता नहीं। समझ में आया?

**वहाँ परमानन्द दशा में मग्न होकर...** अब, देखो! आगे बढ़ते हैं। क्या कहते हैं? पहला तो यह स्व-आश्रय निश्चय का भान हुआ; क्या हुआ? कि अज्ञान का नाश हुआ, भेदज्ञान की प्राप्ति हुई, अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव हुआ। यह निश्चय स्व-आश्रय, स्वावलम्बन; इससे **वहाँ परमानन्द दशा में मग्न होकर...** देखो! बाकी क्रियाकाण्ड करते-करते केवलज्ञान पाता है - ऐसा नहीं, भाई! क्या कहा, समझ में आया? **वहाँ परमानन्द दशा में...** जो परमानन्द का अनुभव हुआ था, यह वस्तु शुद्ध चैतन्य अपना अनुभव हुआ, उसी-उसी में लीन हुआ, यह अब चारित्र हुआ। समझ में आया? यह चारित्र हुआ।

www.vitragvani.com



अपना शुद्धस्वरूप, एक—उसका आश्रय लिया पर्याय ने, अर्थात् कि अनुभव हुआ। अनुभव होने पर अज्ञान का नाश हुआ, भेदविज्ञान की प्राप्ति हुई और यहाँ आनन्द का अनुभव हुआ। ऐसा आत्मा जहाँ अनुभव में आया; अब, उसी-उसी में लीन होने पर... अब केवलज्ञान प्राप्त करना है न? **परमानन्द दशा में मग्न होकर...** देखा? परमानन्ददशा में मग्न होकर। यहाँ फिर दशा लीन है। यह जाना है, उसी-उसी में लीन होकर। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... **केवल दशा को प्राप्त होता है।** लो! यह केवलज्ञान की-पूर्णता की प्राप्ति को प्राप्त करता है। शुरुआत से, बीच में और ठेठ - तीनों। समझ में आया? नथुलालजी! इसमें है या नहीं? अब तो बहुत हिन्दी (लोग) गुजराती पढ़ना सीख गये हैं। थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करना चाहिए वहाँ। कहो, समझ में आया इसमें? इस भाषा में जिस शैली से आवे न, वह उसमें - हिन्दी में अटक जाता है। यह लिखान तो फिर गुजराती है। हिन्दी में भी यही है, हिन्दी की ही गुजराती है, हों! इसमें कोई घर का नहीं डाला है, इसमें। लो!

**वहाँ परमानन्द दशा में मग्न होकर...** अब कहते हैं, केवलज्ञान कैसे पाये? अपनी स्व-आश्रय की दृष्टि होकर, अनुभव हुआ; इस स्व-शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव हुआ, यह निश्चय हुआ, यह मुख्य हुआ। अब केवल(ज्ञान) कैसे पावे? केवल(ज्ञान) प्राप्त करने की कोई दूसरी विधि होगी? कि यह आत्मा जो आनन्द के अनुभव में आया, उसी-उसी में आनन्द में विशेष मग्न होने पर (केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।) है न? इसलिए भाषा ऐसी ली है, देखा? परमानन्ददशा में मग्न है - ऐसी भाषा ली है, क्योंकि आनन्द, जो यह स्वरूप ऐसा है, ऐसे जहाँ शुद्ध अनुभव हुआ, उस आनन्द में मग्न होकर, खूब मग्न हो गया। **मग्न होकर केवल दशा को प्राप्त होता है।** उसमें मग्न होकर केवलज्ञान को पाता है। व्रत के विकल्प करके केवलज्ञान को पाता है — ऐसा नहीं है। आहाहा!

दूसरी जगह कहा कि व्यवहार के कथन हैं, जाननेयोग्य कहेंगे। उपचार के कथन, व्यवहार के कथन, आरोपित कथन, भेद के कथन — ये सब जाननेयोग्य हैं, आदरनेयोग्य नहीं। कहो, समझ में आया? इसीलिए कहते हैं कि इस मुख्य और उपचार का जिसे

www.vitragvani.com



ज्ञान नहीं, वह सब गड़बड़ करेगा। दूसरे शास्त्र में कहा है... परन्तु इस वस्तु को निश्चय रखकर, भेदरूप और पररूप के जितने कथन हैं, वे सब उपचारिक हैं, वे ज्ञान करने के लिये हैं, आदर करने के लिये नहीं। तब अब इसने कहा कि निमित्त का ज्ञान कर - ऐसा कहाँ शास्त्र में है ? और ऐसा डाला है। ज्ञान करने के लिये नहीं, तब क्या कहा यह ? जानने के लिये है। आदरणीय तो यह एक ही है। व्यवहार का ज्ञान किया, वह भी आदर करने के लिये है और यह भी आदर करने के लिये है तो दो पहलू पड़े क्यों ? मुख्य और उपचार हुए कैसे ? दोनों आदरणीय होवे तो दो पहलू पड़े कैसे ? दोनों मात्र जानने के लिये ही हों तो दो पड़े कैसे ? समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं **जो अज्ञानी इसको जाने बिना...** देखो ? **जो अज्ञानी इसको जाने बिना...** इसको अर्थात् ? स्व-आश्रय निश्चय अपना शुद्धस्वरूप, इसका अनुभव किये बिना, जाने बिना, पहिचाने बिना। समझ में आया ? आहा...! **जो अज्ञानी इसको जाने बिना...** स्व-आश्रय अनुभव, वह वस्तु है; स्व-आश्रय, वह निश्चय है; स्व-आश्रय, वह मुख्य है - ऐसा जिसे ज्ञान भी नहीं है, जाना भी नहीं है, जानने में मुख्यपना इसका है - यह भी वह लेता नहीं। **धर्म में प्रवृत्ति करते हैं,...** इसे जाने बिना धर्म में लगता है, वह क्या लगता है ? **वे शरीराश्रित क्रियाकाण्ड को उपादेय जानकर,...** क्योंकि वह तो शरीर की क्रिया हुई। यह पूजा, भक्ति, यह दया पालन की, सामायिक की, णमो अरिहंताणं - णमो सिद्धाणं (का) विकल्प उठे, वह सब, वह वाणी मैं बोला - णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं... जाप होता है न ? जाप, यह सब शरीर पर है। ऐसे शरीराश्रित क्रियाकाण्ड को उपादेय जाने, इसे आदरणीय माने। यहाँ जो आदरणीय स्व-आश्रित है, उसका तो जिसे ज्ञान भी नहीं है। समझ में आया ? ऐसा **जाने बिना धर्म में प्रवृत्ति करते हैं,...** देखो ! जाने बिना धर्म में तो लगता है न ? धर्म में अर्थात् मानता है कि मैं धर्म में लगा। तथा ऐसा ऊपर अर्थ करे। देखो ! इसे जाने बिना भी धर्म में तो लगता है न ? है या नहीं, परन्तु इसमें क्या लिखा है ? **इसको जाने बिना धर्म में प्रवृत्ति करते हैं,...** धर्म में लगता है, अर्थात् मैं धर्म करता हूँ — ऐसा मानता है।

**मुमुक्षु :** .....

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com



**उत्तर :** ....अन्दर वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं। मैं धर्म करता हूँ — ऐसा मानता है।

**इसको जाने बिना धर्म में प्रवृत्ति करते हैं,...** अर्थात् कि धर्म करता हूँ – ऐसा मानता है। **वे शरीराश्रित क्रियाकाण्ड...** देखो! यह शरीर की क्रिया, वाणी की क्रिया, विकल्प की क्रिया, मन की क्रिया, यह सब... मैंने स्तुति की, मैंने स्तुति की, लो! शरीर से मैंने अपवास किया, शरीर जीर्ण हुआ, देखो! रोटियाँ नहीं खायी। यह सब **क्रियाकाण्ड को उपादेय जानकर,...** ऐसे जो स्व-आश्रय अभेद शुद्ध चैतन्यस्वरूप को जानता नहीं, उसकी दृष्टि नहीं, उसका ज्ञान नहीं और धर्म करने लगा है, वह शरीर की क्रिया को धर्म मानेगा। आहाहा..! समझ में आया? यहाँ तो यहाँ स्व-आश्रय में जब ज्ञान नहीं तो पराश्रय में धर्म (मानता है।) – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? स्व-आश्रय शब्द है न? इसलिए यहाँ फिर पराश्रय में, शरीराश्रय में – ऐसा कहते हैं।

स्व-आश्रय (अर्थात्) पर से भिन्न अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप के आश्रय से धर्म होता है, इसका तो पता नहीं, इसका ज्ञान नहीं; इसलिए शरीराश्रित अर्थात् पराश्रित **क्रियाकाण्ड को उपादेय जानकर,...** लो! **संसार का कारण जो शुभोपयोग...** ठीक! शरीर से लक्ष्य जाने पर शुभोपयोग हो; दया में, दान में, भक्ति में, पूजा में, व्रत में, ब्रह्मचर्य पालन के शुभभाव हों। समझ में आया? शुभ। **संसार का कारण जो शुभोपयोग...** देखो भाषा? उसे ही मुक्ति मानता है। यही संसार, यही मुझे सम्मत है। संसार का कारण जो (शुभोपयोग)। पहले शरीराश्रित क्रियाकाण्ड है न? आश्रय है न? उसका लक्ष्य होकर शुभभाव हुआ न? दया का, दान का, भक्ति का, परोपकार का, पूजा का; कोई परभाव से, वह शुभ है; शुभ है, वह तो संसार है।

संसार का कारण, भटकने का कारण **शुभोपयोग, उसे ही मुक्ति का कारण मानकर,...** देखो! यह ब्रह्मचर्य मैंने पालन किया, मैंने यह किया – ऐसा विकल्प-राग उठता है। शरीराश्रित.. ऐसा अन्दर परलक्ष्यी शुभभाव है। वह तो शुभ है, वह संसार का कारण है। वाणी से कभी मैं बोला हूँ कि हिंसा करो, ऐसा करो, अमुक करो? हम तो बस, दया पालो, यह करो (-ऐसा कहते हैं।) समझ में आया? मन से भी हम यह कहते हैं।

www.vitragvani.com



ऐसा करो - ऐसे नहीं। यह शुभभाव है। ऐसा करो-सत्य बोलो, झूठ नहीं बोलना, परिणाम प्रवर्ताना... मन में भी हमने शुभयोग को किया है। इस शुभयोग **उसे ही मुक्ति का कारण मानकर,...** यह हमारे मोक्ष का कारण है। कारण शब्द से संवर और निर्जरा। यह शुभ उपयोग ही हमारे संवर और निर्जरा है, लो! समझ में आया? यह कहते हैं न? यह स्पष्ट बात अभी करते हैं, स्पष्ट करते हैं। मुक्ति का कारण अर्थात् मोक्ष का कारण ही यह शुभोपयोग है। बाहुबलीजी की यात्रा, सम्मेदशिखर की यात्रा, यह भाव शुभ है। हो भले, परन्तु यह बन्ध का कारण है। इसे संवर-निर्जरा का कारण मानता है, क्योंकि स्व -आश्रय अभेद का पता नहीं, इसलिए इसका लक्ष्य वहाँ जाता है। इस प्रकार आश्रय का पता नहीं, इसलिए यहाँ आश्रय में जो शुभभाव हो, उसे ही मोक्ष का कारण मानता है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**उत्तर :** यह तत्त्व के, न्याय के आधार से है। इस गाथा में **मुख्योपचार विवरण निरस्तदुस्तरविनेय दुर्बोधा:** अज्ञानी का अज्ञान नाश होने में यह कारण है, तो इस कारण का तो यह स्पष्ट स्पष्टीकरण करते हैं। यहाँ क्या है पाठ? **मुख्योपचार विवरण** एक बात। फिर **निरस्तदुस्तरविनेय दुर्बोधा:** जो अज्ञान महा कठिनाई से नाश हो, ऐसे अज्ञान का नाश शिष्य को होता है। अज्ञान का नाश हो, ऐसा वह मुख्य और उपचार का उपदेश करे। इसी का यह स्पष्टीकरण है। समझ में आया?

अज्ञान का नाश करने के लिये मुख्य उपदेश जो है और उपचार है, इन दोनों का जिसे भलीभाँति ज्ञान है। समझ में आया? इसलिए इसे मुख्य का उपदेश होकर अज्ञान का नाश होगा, उपचार के कथन से, इसे क्या है, इसका ज्ञान होगा। ज्ञान होगा अर्थात् जानने में रहेगा। अज्ञान तो मुख्य के कथन और मुख्य के आश्रय से (नाश) होता है। यह इसका स्पष्टीकरण करते हैं, घर का नहीं। इसलिए कहा न? **व्यवहार निश्चयज्ञा: प्रवर्तयन्ते जगति तीर्थम्** संसार में... समझ में आया? जगत में धर्मतीर्थ का प्रवर्तन कराते हैं। गजब बात है! बहुत सरस बात है, हों! अरे! परन्तु इसके ज्ञान का जहाँ ठिकाना नहीं, स्वाश्रित-पराश्रित का; कहीं का कहीं लगा देता है। पराश्रित में स्व का लाभ मनवा दे और स्वाश्रित कौन है - इसका पता भी नहीं। समझ में आया?

www.vitragvani.com



**संसार का कारण जो शुभोपयोग...** लो! **उसे ही मुक्ति का कारण मानकर,...** उसे ही मोक्ष का कारण मानकर, वही संवर-निर्जरा अर्थात् मोक्ष का मार्ग, ऐसा। शुभोपयोग को ही मोक्ष का मार्ग, लो! यही अभी स्पष्ट कहते हैं न? शुभोपयोग ही क्षायिक समकित का कारण है, इसलिए क्षायिक समकित की क्षपकश्रेणी चढ़े, वह क्षायिक समकिती है। शुद्धोपयोग तब होगा। अब यदि तुम नीचे शुभोपयोग के क्षायिक समकित नहीं मानो तो क्षायिक समकित रहित क्षपकश्रेणी किस प्रकार चढ़ेगा? और नीचे तो शुभोपयोग ही है – ऐसा कहते हैं। अरे.. भगवान! परन्तु मार्ग क्या है? गाढ़ करते हैं न? मिथ्यात्व की गाढ़ करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

शुभोपयोग, ऐसे स्व-आश्रय तत्त्व के अभेद की ओर का आश्रय नहीं, ज्ञान नहीं, भान नहीं, श्रद्धा नहीं, रुचि नहीं; इससे उसे भेद अर्थात् पर-आश्रय में ही उसका लक्ष्य रहा करता है; तो पराश्रय में शरीर, वाणी, और मन के आश्रय से होता जो शुभभाव, बस! उसे ही वह मुक्ति का कारण मानेगा। ऐसे (स्वाश्रय को) कारण नहीं माने। इसका अनुभव, वह मोक्ष का कारण है। इसका अनुभव स्व-आश्रय का अनुभव, वह मोक्ष का कारण है और उसमें लीन होते ही केवलज्ञान होता है, ऐसा जहाँ भान नहीं; इसलिए जो पर-आश्रय में शुभोपयोग हो, उसे हित का कारण मानेगा। हित का कारण कहो या मोक्ष का कारण कहो! ऐसा। मेरा हित है – ऐसा कहे न? मेरे हित को कारण है, उसमें मेरा हित है; हित कहो या मोक्ष कहो। हित के कारण से, मेरा हित इसमें होता है। समझ में आया? णमोकार जपे – णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं... वह पराश्रय है, शुभभाव हुआ। वह कहाँ स्व-आश्रय है? इस स्व-आश्रय का पता नहीं, इसलिए पराश्रित में धर्म माने बिना रहेगा नहीं। शोभालालभाई! ऐसी बात है। सूक्ष्म बात है। आहाहा!

**शुभोपयोग उसे ही मुक्ति का कारण मानकर, स्वरूप से भ्रष्ट होते हुए...** है न? स्व-अखण्ड आनन्द ज्ञायकस्वरूप भाव अभेद है, उससे तो भ्रष्ट है। भ्रष्ट होता हुआ, वहाँ ही रुकता हुआ – शुभोपयोग में धर्म मानता हुआ पराश्रय में होते हुए भाव को धर्म मानता हुआ; स्व-आश्रय के भाव का पता नहीं। **संसार में भ्रमण करते हैं। स्वरूप से भ्रष्ट होते हुए संसार में भ्रमण करते हैं।** बहुत सरस बात की है। चौथी गाथा का

www.vitragvani.com



उपोद्घात बहुत सरस किया है! फिर यह पाँचवीं आयेगी। **इसलिए मुख्य (निश्चय) कथन का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।** लो! इसलिए निश्चय का कहो, मुख्य का कहो, अभेद का कहो, स्व-अवलम्बन का कहो। इसके कथन का जानपना, हों! अवश्य चाहिए। इसके अन्तर के मुख्यपने के ज्ञान बिना जितना सब करे, उसे मोक्षमार्ग माने और संसार में भटके। इसलिए मुख्यपने का ज्ञान अवश्य चाहिए।

**वह निश्चयनय के आधीन है,...** मुख्यपने का ज्ञान, वह निश्चयनय के, स्व-आश्रय के आधीन है; पराश्रय के आधीन वह ज्ञान नहीं है; **इसलिए...** ऊपर शब्द था न? उपदेशदाता; वहाँ से शुरु हुआ था। कहाँ? भावार्थ की पहली लाईन-उपदेशदाता **इसलिए उपदेशदाता निश्चयनय का ज्ञाता होना चाहिए।** सारांश किया है! देखो न! इसलिए उपदेश का देनेवाला निश्चयनय का जानकार चाहिए। **कारण कि स्वयं ही न जाने तो शिष्यों को कैसे समझा सकता है?** स्वयं जानता न होवे तो वह दूसरों को कैसे समझावे? इसलिए स्व-आश्रय मुख्य का ज्ञान चाहिए। उपचार का क्या है - यह फिर कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)